आत्मशुद्धि साधनं धर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

आत्मशुद्धि के साधन को धर्म कहा जाता है। धर्म वस्तु के स्वभाव को कहते हैं। जल का स्वभाग है शीतलता और अग्नि का स्वभाव है उष्णता। स्वभाव को वस्तु से पृथक नहीं किया जा सकता। आत्मा का स्वभाव है चेतना। चेतना को कभी आत्मा से पृथक नहीं किया जा सकता। जहां–जहां चेतना दिखलाई देती है वहां–वहां आत्मा का अस्तित्व है। आत्मा अनादि और अनन्त है। हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता अर्थात् ईश्वर अनादि और अनन्त है। चेतन तत्व सनातन है और जड़ तत्व नश्वर है यही सनातन सत्य है, यही दृष्टि विज्ञान है। इसलिए हमें सभी जीवों को आत्मवत् देखना चाहिए।

आत्मा द्रव्य है, ज्ञान है उसका गुण। जो आत्मा है, वह ज्ञाता है और जो ज्ञाता है, वह आत्मा है। जिस साधन से आत्मा जानती है, वह ज्ञान आत्मा है। इसका तात्पर्य है कि ज्ञान आत्मशून्य नहीं है। आत्मा भी जीव है और चैतन्य भी जीव है। जिस साधन से आत्मा जानती है, वह ज्ञान भी आत्मा है। आत्मा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त है। आत्मा का अस्तित्त्व ध्रुव है। ज्ञान के परिणाम उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। इस प्रकार आत्मा का अनेक रूपों में कथन होता है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान सर्व व्यापक है। आत्मा ज्ञान के बराबर है क्योंकि द्रव्य अपने–अपने गुण–पर्यायों के समान होता है। अतः जीव भी अपने ज्ञानगुण के बराबर है। आत्मा ज्ञान से न तो अधिक और न कम परिणमन करता है। ज्ञान ज्ञेय का प्रमाण है। जैसे ईंधन में स्थित आग ईंधन के बराबर है, उसी तरह सब पदार्थों को जानता हुआ ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। चेतना जीव का मौलिक स्वरूप है।

जीव निसर्गतः अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त चारित्र विशिष्ट है। कर्मों के आवरण के कारण जीव का शुद्ध रूप ओझल रहता है। जब कर्मों का सम्पूर्ण रूप से क्षय हो जाता है तो आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित हो जाता है। जो संसार भ्रमण को जानता है वह राग और

द्वेष दोनों अन्तों से दूर रहता है। वह समूचे लोक में न किसी के द्वारा छेदा जाता है, न भेदा जाता है, न जलाया जाता है और न मारा जाता है। गीता में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है कि आत्मा को न तो काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न गीला किया जा सकता है और न ही सुखाया जा सकता है। आत्मा नित्य सर्वगत और सनातन है। आत्मा के संकोच–विकोच की दीपक के प्रकाश से तुलना की जा सकती है। खुले आकाश में रखे दीपक का प्रकाश अधिक क्षेत्र में विस्तृत रहता है। उसी दीपक को यदि कोठरी में रख दें तो वही प्रकाश कोठरी में समा जाता है। एक घड़े के नीचे रखने से वही प्रकाश घड़े में समा जाता है। उसी प्रकार कार्मण शरीर के आवरण से आत्म प्रदेशों का संकोच और विस्तार होता रहता है।

जीव उपयोगमय है, अमूर्त्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है। दर्शनों में आत्मा के परिमाण की विभिन्न कल्पनाएं मिलती है। यह मनोनय आत्मा अन्तर हृदय में चावल या यव के दाने जितना है। यह आत्मा अणु से अणुतर और महान् से भी महत्तर जीव की हृदयरूपी गुहा में स्थित है। आत्मा ही ब्रह्म से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणि समुदाय की गुहा–हृदय में निहित है। आत्मा को अमर और शरीर को विनश्वर माना गया है। जैन दर्शन आत्मा को शाश्वत मानता है और साथ ही परिवर्तनशील भी माना है। आत्मा परिणाम धर्मा है। परिणमन अनित्यता का लक्षण है। आत्मा नित्य तथा अनित्य दोनों है। आत्मा का चैतन्य स्वरूप कदापि नहीं छूटता, अतः आत्मा नित्य है। चेतन कभी अचेतन और अचेतन कभी चेतन नहीं बन सकता। आत्म प्रदेशों में परिवर्तन नहीं होता इस दृष्टि से आत्मा अमर है। आत्मा के प्रदेश कभी संकुचित रहते हैं, कभी विकसित रहते हैं, कभी सुख में, कभी दुःख में आत्मा के अनेक प्रकार की अवस्थाएं होती रहती है। इन कारणों से तथा पर्यायान्तर से आत्मा अनित्य है।

गीता में कहा गया है कि यह आत्मा किसी काल में न तो जन्मता है और न मरता है तथा यह न उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है। यदि मारने वाला आत्मा को मारने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मारता है और न मारा जाता है। आत्मकल्याण का इच्छुक व्यक्ति

तपस्या के द्वारा कर्म शरीर को क्षीणकर आत्मा को निष्कषाय करे। जो कुछ विषमता है वह कषाययुक्त है। जो क्रोध करता है, वह मान करता है, इसी प्रकार मान का माया से, माया का लोभ से, लोभ का राग से, राग का द्वेष तथा मोह से नियत सम्बन्ध है। इसके प्रभाव से ही प्राणी गर्भवास करता है। गर्भ से जन्म, जन्म से मृत्यु, मृत्यु से अपने कर्मों के अनुसार नरक, तिर्यञ्च आदि गतियों में जाता है। उसका अंतिम परिणाम है– दुःख। सुख–दुःख की लम्बी श्रृंखला को रोकने के लिये तथा कृतकर्मों का भेदन करने के लिये कषाय को रोकना आवश्यक है। निष्कषाय व्यक्ति राग–द्वेष से मुक्त होता है। राग–द्वेष से मुक्ति का अर्थ है भवचक्र से मुक्ति। शुद्धआत्मा का स्वरूप ज्ञानदर्शन चारित्रयुक्त है। आत्मा अपनी शुद्धावस्था में सिद्धशिला में विराजता है।